प्रवचन नं. ७० गाथा-१४ दिनाङ्क २७-०८-१९७८ रविवार
श्रावण कृष्ण ९, वीर निर्वाण संवत् २५०४

श्रीसमयसार.... यह तो १५ वीं गाथा में आता है न? **अपदेससंतमज्झं** पण्डितजी! **अपदेससंतमज्झं** उसका अर्थ उन विद्यानन्दजी ने अखण्ड किया है। यह बात झूठी है। सुनो, तो अब यह कहते हैं कि अपदेस का अर्थ अमृतचन्द्राचार्य के जानने में नहीं आया, तो नहीं किया — ऐसा कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य को **अपदेससंतमज्झं** शब्द का अर्थ ज्ञान में-ख्याल में नहीं आया तो नहीं लिखा, एक बात। अपदेस का अर्थ जयसेनाचार्य (कृत) टीका में द्रव्यश्रुत किया है, एक बात और **अपदेससंतमज्झं** का अर्थ इस सूत्र में, १५ वीं गाथा आयी उसमें आ गया। पण्डितजी! द्रव्यश्रुत, यह शब्द ही द्रव्यश्रुत है। १५ वीं गाथा है, वही द्रव्यश्रुत है, तो द्रव्यश्रुत में वह आ गया। अपदेस का अर्थ अमृतचन्द्राचार्य को ख्याल नहीं रहा तो नहीं आया — ऐसा नहीं है।

श्रोता : उसमें गर्भित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है? वह उसमें गाथा, वही द्रव्यश्रुत है। **अपदेससंतमज्झं** आहाहा! द्रव्यश्रुत में भी यह कहा है और भावश्रुत में भी, वीतरागता भाव शुद्धोपयोग, वह जैन शासन — ऐसा कहा परन्तु द्रव्यश्रुत में भी वह गाथा है, वह द्रव्यश्रुत है। पण्डितजी! आहाहा! **अपदेससंतमज्झं** इस गाथा में — द्रव्य श्रुत में यह आया अर्थात् द्रव्यश्रुत का अर्थ। अपदेस का अर्थ अमृतचन्द्राचार्य ने नहीं किया है (— ऐसा नहीं है)।

श्रोता : यह भाव का अर्थ किया, उसमें द्रव्य आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, द्रव्य — ऐसा नहीं, ऐसा भी नहीं। यह गाथा वह द्रव्यश्रुत है — ऐसा कहना है। पण्डितजी ! यह गाथा, वही द्रव्यश्रुत है, तो द्रव्यश्रुत आ गया, भाई ! और उसका भावश्रुत तो **पस्सिदीअप्पाणं** शुद्ध उपयोग में आत्मा को देखता है, वह जैन शासन भावश्रुत हुआ। पण्डितजी ! ठीक है, समझ में आया ? जरा गड़बड़ हो गयी है बहुत.... अपदेस का अर्थ अखण्ड किया है, यह बात ऐसे-ऐसे है नहीं। समझ में आया ?

और दूसरी बात यह कहे, रात्रि को प्रश्न हुआ था, चन्दूभाई के उस प्रश्न का उत्तर अबकी रात्रि को बहुत चला था कि जैसे क्षेत्र का अन्त नहीं है, यह वस्तुस्थिति है, वैसे काल का अन्त नहीं है। शुरुआत कहाँ से ? उसका, उस वस्तु का स्वरूप ऐसा है — ऐसी द्रव्य की पर्याय पहली क्या, उसका अन्त नहीं, पहली क्या ? आहाहा ! ऐसे आत्मा में जो अनन्त गुण हैं, उनमें अन्तिम गुण कौन सा ? वह है ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? तो इतना द्रव्य का स्वभाव — गुण अमाप है और पर्याय एक समय की भी अनन्त है, वह भी अमाप है। वह अनन्त पर्याय एक समय की है तो यह अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त में अन्तिम यह एक पर्याय, उसमें एक समय में, वह भी नहीं है। आहाहा ! तब कोई कहे कि इतने सब द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अमाप और उसका माप पर्याय ले ले, तब तो विकल्प है, उसमें आया ? समझ में आया ? ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

यह रात्रि को कहना था, वो तो चिद्विलास में है, चिद्विलास है न ? उसमें चौतीस पृष्ठ पर है, देखो ! सामान्यत: से निर्विकल्प वस्तु है, विशेषता-विशेषपना एक द्रव्य में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण, आहाहा ! जिसका अन्त नहीं — ऐसा जब गुरु विशेष समझाते हैं... आहाहा ! और पर्याय एक समय में अनन्त, अवधि एक समय की परन्तु अनन्त पर्याय में यह पर्याय अन्तिम है — ऐसा नहीं है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... एक समय में, हाँ ! ऐसे शिष्य को प्रतिबोध कीजिए। चिद्विलास में है, चिद्विलास ! दीपचन्दजी !

तब ज्यों-ज्यों शिष्य, गुरु के प्रतिबोध को गुण का स्वरूप... नियमसार में ऐसा कहा कि द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों का विचार करना, वह विकल्प और अनावश्यक है। यहाँ यह कहा कि द्रव्य-गुण और अनन्त... अनन्त गुण और अनन्त... अनन्त पर्याय को गुरु जिस शिष्य को समझाते हैं... आहाहा ! तब गुरु के प्रतिबोध को गुण का स्वरूप जानकर,

जानकर विशेष भेदी होता जाता है, विशेष उसका भेदज्ञान निर्मल बहुत हो जाता है और तब उस शिष्य के आनन्द की तरंग उठती है। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक और अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त..., क्षेत्र से अन्त यह आ गया इतने में, परन्तु भाव की संख्या की अनन्तता का अन्त नहीं है। आहाहा! और एक समय की पर्याय, अनन्त में यह अन्तिम.... है तो एक समय परन्तु अनन्त में यह पर्याय अन्तिम ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा कोई गम्भीर, गूढ़ धर्म, गुण का और पर्याय का, क्षेत्र का और काल का (है)। इस प्रकार जैसे गुरु व्याख्या करते हैं तो शिष्य को सुनने में विशेष भेदज्ञान हो जाता है और जान-जानकर आनन्द की तरंग उठती है, वह (उसी) समय वस्तु का निर्विकल्प आस्वाद करता है। पण्डितजी! बात है भाई! यह तो गम्भीर, अलौकिक बात है, यह कोई शास्त्र के अकेले शब्द की बात नहीं है। आहाहा!

अनन्त... अनन्त... अनन्त आत्मा में जैसे यह एक विचार की कसौटी में न ले, तब तक अनन्त है अनन्त है भले माने, परन्तु अन्दर कसौटी में चढ़ाये जब आहाहा! तो एक वस्तु में अनन्त गुण और एक परमाणु में अनन्त गुण... जितनी संख्या में एक आत्मा में गुण है, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... का अन्त नहीं, ऐसे एक परमाणु में अस्तित्व-वस्तुत्व आदि इतने अनन्त गुण हैं कि उसका अन्त नहीं। परमाणु इतना आहाहा! और एक आकाश, एक आकाश में भी अनन्त गुण हैं। जितने परमाणु में हैं, इतने आकाश में हैं और इतने एक आत्मा में हैं। आहाहा! असंख्य प्रदेशी में भी अनन्त, अनन्त अनन्त अनन्त एक परमाणु में भी अनन्त... अनन्त एक प्रदेश में.... अनन्त प्रदेशी आकाश में अनन्त... अनन्त... आहाहा! समझ में आया? नींद आती है नींद, अभी यहाँ नींद चढ़ गयी है, बहुत बार, रात्रि में चाहे जो करते हो परन्तु व्याख्यान में इसे नींद ही आती है, आँखें भारी हो जाती हैं — ऐसी बात में, भारी आँखें हो! समझ में आया? इसमें जरा समझने की चीज है। आहाहा!

श्रोता : अनन्त तो कई प्रकार के होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनन्त तो अन्त न आवे, वह अनन्त है। अर्द्धपुद्गल (परावर्तनकाल) के अनन्त का तो अन्त आता है। क्या? अर्द्धपुद्गल है, उस अनन्त का अनन्त काल है परन्तु उसका अन्त आता है, परन्तु अनन्त पुद्गलपरावर्तन का कभी अन्त

नहीं। आहाहा! ऐसे एक द्रव्य में अनन्त गुण का कोई अन्त नहीं। इसी प्रकार आकाश के क्षेत्र का कोई अन्त नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई!

श्रोता : एक समय की पर्याय का अन्त नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में अनन्त पर्याय का अन्त नहीं कि यह पर्याय अन्तिम की एक समय में अनन्त तो यह अनन्त, अनन्त, अनन्त, अनन्त, अनन्त, अनन्त, अनन्त में अन्तिम की है — ऐसा अन्त नहीं है। भाई! कोई (अचिन्त्य) वस्तु है।

श्रोता : गुण का अन्त नहीं, इसलिए पर्याय का अन्त नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण का अन्त नहीं, पर्याय तो एक समय की है, उस त्रिकाली का अन्त नहीं, इस एक समय का अन्त नहीं। आहाहा!

श्रोता : एक समय की अन्तिम पर्याय कौन सी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तिम पर्याय क्या? पर्याय अनन्त है, उसमें अन्तिम क्या? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अनन्त अनन्त चौबीसी हो जाये तो भी उसका अनन्त चौबीसी में अन्त आ गया, आखिरी, परन्तु यह तो अनन्त, अनन्त काल कभी आदि नहीं है, अन्त नहीं है, उसका कभी अन्त नहीं और शुरुआत नहीं। आहाहा!

श्रोता : अनन्त कहना और अन्त आ जाये, यह क्या?

समाधान : अन्त कहाँ? किसने कहा अन्त आ जाये? वह यह तो अन्त आ गया न यहाँ! अर्द्धपुद्गल परावर्तन के अनन्त काल का अन्त आ गया, यह अन्त है न? अन्त, इस प्रकार का अन्त है — ऐसा धवल में पाठ है, ऐसा। धवल में ऐसा पाठ लिया है कि अनन्त के दो प्रकार — अर्द्धपुद्गल, वह अनन्त है परन्तु उसका अन्त आ जाता है। भाई! यह शास्त्र में आधार पड़ा है। शास्त्र में तो दिगम्बर सन्तों ने गजब काम किया है! आहाहा! अर्द्धपुद्गल का अन्त आ गया। अर्द्धपुद्गल (का) अन्त है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण जो स्वभाव का अन्त नहीं, भाई! अलौकिक बातें हैं बापू! प्रभु! तेरी प्रभुता का पार नहीं पड़ता। आहाहा! वह अनन्त अमाप, उसका ज्ञानपर्याय माप ले लेती है। यह क्या कहा? ज्ञान की वर्तमान पर्याय अनन्त, अनन्त, अनन्त जिसका अन्त नहीं, उसका माप ले लेती है। आहाहा!

श्रोता : माप ले लिया तो अन्त आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका अन्त कहाँ आया? अनन्त का, अनन्त का, अनन्त का यहाँ ज्ञान आया; अनन्त का अनन्त ज्ञान आया। बहुत सूक्ष्म बात भाई! समझ में आया?

द्रव्यानुयोग बहुत सूक्ष्म है — ऐसे कोई साधारण अभ्यास से समझ में आये — ऐसी चीज नहीं है, भाई! आहाहा! उसकी एक समय की पर्याय में भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद, आहाहा! एक समय की पर्याय में अनन्त में की एक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं। उनका अन्त नहीं इतने अविभाग प्रतिच्छेद हैं, क्योंकि एक समय में अन्त नहीं ऐसे क्षेत्र का ज्ञान आ गया। अन्त नहीं ऐसे काल का ज्ञान आ गया। जो अनन्त धर्म हैं, उनका अन्त नहीं, उसका पर्याय में ज्ञान-ख्याल आ गया। आहाहा! समझ में आया? तो उस पर्याय में अनन्त, अनन्त, अनन्त, अनन्त सामर्थ्य है। आहाहा! वह सब द्रव्यश्रुत में कहा है। समझ में आया? यह १५ वीं गाथा में जो यह आयेगा।

जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

इसका अर्थ की अमृतचन्द्राचार्य ने अन्दर अपदेस का अर्थ किया ही नहीं ऐसा नहीं है। इस **अपदेससंमज्झं** जो सूत्र कहा उसमें यह द्रव्यश्रुत आ गया। समझ में आया? जरा! आहाहा!

श्रोता : पूरे जिनशासन का द्रव्यश्रुत आ गया १५ वीं गाथा में।

समाधान : वह द्रव्यश्रुत ही यह है कि जिसमें अपदेस अर्थात् द्रव्यश्रुत, उसमें आया। क्या आया? कि अबद्धस्पृष्ट आत्मा है, वह उसमें आया है और भावश्रुत में भी यह आया शुद्धोपयोग में कि अबद्धस्पृष्ट आत्मा वह शुद्धोपयोग में आया, वही जिनशासन है। द्रव्यश्रुत में यह कहा और भावश्रुतरूप परिणमन हुआ... आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : १५ वीं गाथा की अपदेस है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ **अपदेससंमज्झं** ऐसी बात है भाई! आहाहा!

अभी तो कल्पना से अर्थ करते हैं — ऐसा नहीं चलता। भाई! आचार्य कहते हैं वह तो सन्त कहते हैं, उनकी वाणी का सार है। आहाहा! वह वाणी, वाणी में जो भाव कहने

में आया है। अपार है। वाणी का वाणी में भाव, हाँ! आहाहा! द्रव्य-गुण का भाव, वाणी का अपना भाव, वह वाणी कहती है। आहाहा! वाणी में द्रव्य-गुण जो भाववस्तु है, वह भाव उसमें नहीं आता परन्तु वाणी, जितना द्रव्य-गुण भाव है, उसके कथन की शक्ति भाषा की पर्याय में है, भाषा की पर्याय में है, भाषा की पर्याय में वह अनन्त द्रव्य-गुण-पर्याय नहीं आये हैं। आहाहा! अलौकिक बातें हैं, बापू! यह तो... आहाहा! समझ में आया?

इसलिए द्रव्यश्रुत में भी... गाथा ही द्रव्यश्रुत है तो उसमें भी आ गया है और अमृतचन्द्राचार्य ने उसका अर्थ नहीं किया — ऐसा नहीं है। यह गाथा **अपदेससंज्मझं** कहा, वही उसमें द्रव्यश्रुत आ गया और जयसेनाचार्य ने उसकी टीका में स्पष्ट लिया — अपदेस अर्थात् द्रव्यश्रुतं मज्झं — द्रव्यश्रुत में यह कहा है। आहाहा! शान्त अर्थात् भावश्रुत और अपदेस, वह द्रव्यश्रुत। द्रव्यश्रुत में भी आत्मा अबद्धस्पृष्ट कहा गया है और भावश्रुत में भी अबद्धस्पृष्ट का अनुभव होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है भाई! है? यह तो उसका अर्थ आया है समयसार में देखा तो, और यह कल कहना था न तो उसमें यह आया है कि समयसार व्यवहार को लेकर चलता है और उसका अन्तिम लक्ष्य निश्चय तक पहुँचना है — ऐसा नहीं है। उसमें लिखा है यह तो वीर पत्र (एक जैन समाचार-पत्र) आया न, वीर में यह पत्र कल बताना था और कोई ले गया था। यह मैंने नहीं, मेरा तो चिह्न किया है, दूसरा कोई ले गया। यह तो मगनलालजी लाये थे।

क्या कहा? यहाँ अपने चलता है देखो! **पर्यायार्थिकरूप व्यवहारनय को गौण करके अभूतार्थ (असत्यार्थ) कहा है.....** यहाँ आया है, बीच में। है? **जीव उसका अनुभव करता है तब परद्रव्य के भावों स्वरूप परिणमित नहीं होता; इसलिए कर्मबन्ध नहीं होता और संसार से निवृत्ति हो जाती है।** वहाँ आया है, है? पण्डितजी! है? यह क्या कहा? कि यह आत्मा तो **अखण्ड, नित्य, अनादि निधन है, उसे जानने से पर्यायबुद्धि का पक्षपात मिट जाता है...** है? **परद्रव्यों से उनके भावों से और उनके निमित्त से होनेवाले अपने विभावों से अपने आत्मा को भिन्न जानकर....** आहाहा! परद्रव्य से, परद्रव्य के भाव से और परद्रव्य के निमित्त से होनेवाला अपना विकार.... आहाहा! तीन बोल आये हैं। **भिन्न जानकर जीव उसका अनुभव करता है तब परद्रव्य के भावों स्वरूप परिणमित नहीं होता;....** तब रागरूप परिणमन नहीं होता। आहाहा!

सूक्ष्म बात भाई! यह तो जैन शासन! उसमें समयसार और उसकी टीका और उसका मर्म पण्डित जयचन्दजी ने खोल दिया है। आहाहा! **इसलिए कर्मबन्ध नहीं होता....**

पर्यायार्थिकरूप व्यवहारनय को गौण करके.... पर्याय है, नहीं है — ऐसा नहीं है परन्तु पर्यायार्थिकनय को गौण करके, अभाव करके नहीं.... पर्याय का अभाव करके हो तो वेदान्त हो जाता है। वस्तु ऐसी नहीं है। आहाहा! पर्यायार्थिकनय को गौण करके, लक्ष्य छोड़ाने को उसे गौण करके **अभूतार्थ (असत्यार्थ) कहा है....** आहाहा! पर्याय न हो और गुण-भेद न हो तो वस्तु ही नहीं है — ऐसा हो जाता है। आहाहा!

शुद्ध निश्चयनय को सत्यार्थ कहकर उसका आलम्बन दिया है.... शुद्धनय का विषय जो ध्रुव त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, उसका आश्रय लेने को — आलम्बन लेने को कहा है। भेद का अवलम्बन छोड़ाने को, आहाहा! पर्याय का आलम्बन छोड़ाने को... पर्याय नहीं है — ऐसा नहीं है, पर्याय है। है? **वस्तुस्वरूप की प्राप्ति होने के बाद....** जब अन्दर में आत्मा प्राप्त हो गया फिर **उसका भी आलम्बन नहीं रहता।....** तत्पश्चात् आश्रय करना नहीं रहता। पर्याय में पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई तो आलम्बन नहीं रहा — द्रव्य का आश्रय करना नहीं रहा। क्या कहते हैं? आहा! जब तक आत्मा पूर्ण पर्याय को प्राप्त न हो, तब तक द्रव्यार्थिकनय का अवलम्बन लेने को कहा, परन्तु उस अवलम्बन से जब पर्याय में पूर्णता हो गयी, तत्पश्चात् द्रव्य का अवलम्बन नहीं रहा। अवलम्बन तो, वह आश्रय अपूर्ण था, तब तक अवलम्बन रहता था। पूर्ण होने के बाद द्रव्य का आश्रय तो रहा नहीं, वह तो पर्याय पूर्ण हो गयी।

ऐसी बात यह पण्डित जयचन्दजी ने लिखी, उसे समझना कठिन पड़ता है। समझ में आया? दिगम्बर के पण्डित भी यथार्थ कहते हैं और हमारे पण्डितजी ने, ऐसी चर्चा हुई थी न खानियां में, तब वे लोग कहते थे मुनि और आचार्यों के वचन वही हमें प्रमाण हैं। यह कहें कि भाई, कि सबको इन पण्डितों के वचन भी प्रमाण हैं। पण्डितजी! कहा था, खानियां चर्चा में, एक ही कहने (वाला) निकले थे। आहाहा! जो सम्यग्दृष्टि जीव है, उसका कथन बराबर मान्य है। आचार्यों के ही मान्य है तो फिर यह पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, वे आचार्य नहीं हैं तो उनका मान्य नहीं है? ऐसा कहे माने वह उसकी स्वच्छन्दता है। आहाहा! दिगम्बर गृहस्थ भी सम्यग्दृष्टि-बनारसीदास, टोडरमलजी आदि सब आधार,

सब आधार लेने का है, उनके शब्द भी सिद्धान्त के अनुसार बराबर सत्य है। समझ में आया ? गृहस्थ समकिती (ने) बनाया है, इसलिए यहाँ उनका आश्रय (आधार) नहीं लेना और वह आधार नहीं — ऐसा नहीं है। सम्यग्दृष्टि तो जैसा तिर्यंच है, वैसे ही सिद्ध सम्यग्दृष्टि हैं। आहाहा!

भगवान तीन लोक का नाथ जहाँ अन्दर दृष्टि में आया, आहाहा! वर्तमान पर्याय में पूर्णानन्द का नाथ लक्ष्य में, पर्याय में द्रव्य की सामर्थ्य आया... सामर्थ्य आया, द्रव्य नहीं, आहाहा! उसकी दृष्टिवान चाहे जो कहे, वह यथार्थ सिद्धान्त अनुसार कहते हैं।

श्रोता : चाहे जो कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : है ? चाहे जो कहे ! चाहे जो कहे अर्थात् वह यथार्थ ही कहता है, वही कहता है, चाहे जो कहे, उसको जो यथार्थ रुचता है, वह कहता है। आहाहा ! वह यहाँ कहा, देखो !

शुद्ध निश्चयनय को सत्यार्थ कहकर उसका आलम्बन दिया है। वस्तुस्वरूप की प्राप्ति होने के बाद... द्रव्यस्वरूप का आश्रय — अवलम्बन लिया, जब तक पूर्ण नहीं है, तब तक (अवलम्बन लिया) और पूर्ण हो गया, तत्पश्चात् आलम्बन नहीं रहता, बाद में आश्रय लेना नहीं रहता। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! वीतराग का मार्ग, यह दर्शनशुद्धि का मार्ग समझना बहुत अलौकिक है भाई! आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! अरे! इसमें अभिमान करे, थोड़ा बहुत जाना... हमने जाना... बापू! इन बातों की बातें कोई अलौकिक है। जिसके ज्ञान का माप न आवे गुणों का, उसका माप पर्याय कर ले, बापू! वह सम्यग्दर्शन कैसी चीज है! आहाहा! द्रव्य में गुण का माप नहीं — अन्त नहीं कि यह अन्तिम है, उसका सम्यग्ज्ञान पर्याय अन्त ले ले। आहाहा! उस सम्यग्ज्ञान की पर्याय की कितनी महिमा है, पर्याय की हाँ! आहाहा! इसका नाम भावश्रुतज्ञान कहा जाता है।

श्रोता : पर्याय की महिमा चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय की महिमा इस प्रकार। किस प्रकार ? पर्याय की महिमा द्रव्य से कहीं बढ़ नहीं जाती परन्तु पर्याय में द्रव्य का माहात्म्य ख्याल आ गया तो उस सारे

द्रव्य का, सारे गुण का, सारे लोकालोक का अपनी पर्याय में उसका ज्ञान अर्थात् माप आ गया। आहाहा! एक ही पर्याय में सारा लोकालोक का और उस पर्याय में अनन्त पर्याय का, उस पर्याय में अनन्त गुण का, उस पर्याय में अनन्त द्रव्य का (माप आ गया है)।

जीव द्रव्य कितना? कि आदि-अन्तरहित काल है, अनादि सान्त अभी तक का काल, उससे अनन्त गुणा जीव है। त्रिकाल से अनन्तवें भाग है। जीवद्रव्य की संख्या त्रिकाल समय से अनन्तवें भाग है, परन्तु भूतकाल अनादि से अन्त तक के काल से जीवद्रव्य अनन्त गुणे हैं। आहाहा! क्या है यह? आहाहा! अरे! जिसकी-काल की आदि नहीं, इसका अनादि-अनन्त काल, उससे अनन्त गुणे जीव की संख्या, प्रभु द्रव्य कितना? आहाहा! और उससे अनन्त गुणे परमाणु, और उससे अनन्त गुणे त्रिकाल के समय और उससे अनन्त गुणे एक आकाश के प्रदेश और उससे अनन्त गुणे एक द्रव्य के धर्म/गुण। भाई! यह साधारण बात नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! यह तो धारणा का थोड़ा बहुत ज्ञान हो जाये, वहाँ तो मानो कि ओहोहो! हमारे तो बहुत हो गया। अब जगत को बताओ, जगत जाने। अरे भैया! तुम क्या? आहाहा!

यह कहा देखो! **इस कथन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि शुद्धनय को सत्यार्थ कहा है, इसलिए अशुद्धनय सर्वथा असत्यार्थ ही है।....** पर्याय अशुद्ध द्रव्यार्थिक पर्याय, अशुद्ध द्रव्यार्थिक व्यवहारनय बिल्कुल झूठा है, है ही नहीं — ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! **ऐसा मानने से वेदान्तमतवाले जो कि संसार को सर्वथा अवस्तु मानते हैं....** यह माया कहते हैं कि यामा, वह पर्याय और भेद उसमें नहीं ऐसा हो जायेगा। यह माया कहते हैं न, माया है, सब माया है परन्तु माया है या नहीं? समझ में आया? (राजकोट में एक) वेदान्ती के साथ बहुत चर्चा होती थी। मोतीलालजी, परमहंस आया था। पहले व्याख्यान में आता था, बाद में परमहंस हो गया, बाद में आया, तुम वेदान्त... वेदान्त करते हो, यह सब लोग... तो दुःख है या नहीं अन्दर पर्याय में? दुःख है या नहीं, दुःख से मुक्त होना है तो दुःख है या नहीं? दुःख है तो दुःख और आत्मा दो चीज हो गयी। है? द्वैत हो गया और दुःख का अभाव होकर सुख आता है, वह भी पर्याय में आया। तो द्रव्य और पर्याय दो हो गये। ऐसा नहीं चलता कहा यहाँ। यहाँ

तो वस्तु है, जैसी चीज है, ऐसी समझना चाहिए। कम, अधिक और विपरीत सब मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? आहाहा!

संसार को सर्वथा अवस्तु मानते हैं, उनका सर्वथा एकान्त पक्ष आ जायेगा और उससे मिथ्यात्व आ जायेगा,.... पर्याय है ही नहीं... पर्यायनय को असत्यार्थ कहा, अशुद्धता को असत्यार्थ कहा, भेद को असत्यार्थ कहा तो भेद और पर्याय है ही नहीं — ऐसा है नहीं। भेद भी है और पर्याय भी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बातें परन्तु अब....

इस प्रकार यह शुद्धनय का आलम्बन भी वेदान्तियों की भाँति मिथ्यादृष्टिपना लायेगा।.... अत: पर्याय को माने ही नहीं, अशुद्धता पर्याय में है, वह नहीं माने तो वेदान्तियों की तरह मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। आहाहा! देखो, अब विशिष्टता।

इसलिए सर्वनयों की कथंचित् सत्यार्थता श्रद्धान करने से.... भाषा देखो, क्या कहते हैं? **इसलिए सर्वनयों की कथंचित् सत्यार्थता....** पर्यायनय की भी सत्यार्थता द्रव्यनय की भी सत्यार्थता.... आहाहा। है? पर्याय में अशुद्धता, वह सत्यार्थ है; पर्याय, वह सत्यार्थ है; त्रिकाल भी सत्यार्थ है। है?

श्रोता : यह तो प्रमाण का विषय हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह प्रमाण के विषय की बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो पर्याय में असत्यार्थता कही तो यह पर्याय असत्यार्थ नहीं — इतना कहना है। पर्याय है, वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से एक समय की पर्याय को लक्ष्य छोड़ाने के लिए असत्यार्थ, गौण करके असत्यार्थ कहा; पर्याय का अभाव करके असत्यार्थ कहा — ऐसा है नहीं। आहाहा!

(समयसार की) ११ वीं गाथा में कहा न? **व्यवहारोऽभूयत्थो** — ११ वीं गाथा मूल, जैनदर्शन का प्राण **व्यवहारोऽभूयत्थो...** व्यवहार शब्द से (आशय) पर्याय। पर्याय अभूतार्थ, किस प्रकार अभूतार्थ? उसका लक्ष्य छोड़ाने को गौण करके अभूतार्थ कहा है। पर्याय नहीं है और ऐसा कहकर असत्यार्थ कहा है — ऐसा नहीं है। अरे ऐसा सब! है? भाई! तेरी लीला तो देख! आहाहा! तेरे गुण की शिला पड़ी है अन्दर में महाप्रभु, तथापि पर्याय में विकृत अवस्था और दु:ख है। वह नहीं है — ऐसा मानो (तो) एकान्त हो जायेगा।

कथंचित्.... देखा! **सर्वनयों की....** पर्यायनय, द्रव्यार्थिकनय, व्यवहारनय,

अशुद्धनय, अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय — ये कथंचित् सत्यार्थ, सबको कथंचित् सत्यार्थ मानना चाहिए। आहाहा! **कथंचित् सत्यार्थ का श्रद्धान करने से....** देखो! पहले तो ऐसा कहा था कि द्रव्य का — त्रिकाली का श्रद्धान करना, वह सम्यग्दर्शन है और यहाँ तो यह कहा कि पर्याय में अशुद्धता है, पर्याय है, उसका भी ज्ञान रखकर, त्रिकाली का आश्रय लेना। उसका ज्ञान छोड़ देना कि वह है ही नहीं और त्रिकाली का आश्रय लेना — ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है देवचन्दजी! क्या कहते हैं?

श्रोता : संस्कृत व्याकरणवालों का तो काम नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कृत व्याकरण का यहाँ क्या काम है? यहाँ तो अन्तर की बात है बापू! यहाँ अन्तर के संस्कार की बात है, संस्कृत की बात यहाँ नहीं। आहाहा! है?

सर्वनयों की कथंचित् सत्यार्थ.... व्यवहारनय, अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय, पर्यायनय भी है। कथंचित् पर्याय की अपेक्षा से पर्याय है, द्रव्य की अपेक्षा से द्रव्य है। आहाहा! देखो न, कितना स्पष्टीकरण किया! आहाहा! पहले ऐसा कहा कि व्यवहार अभूतार्थ है तो यहाँ कहते हैं कि व्यवहार भी है, वह कथंचित् है, पर्याय अपेक्षा से है — ऐसा ज्ञान करके, त्रिकाली का आश्रय लेना। उसका ज्ञान छोड़ दे कि पर्याय है ही नहीं, तो त्रिकाली का आश्रय नहीं होगा, उसकी दृष्टि झूठी होगी, आहाहा! समझ में आया? गोदिकाजी! यह सब जानपना करना पड़ेगा, वहाँ मील में, धूल में कहीं नहीं.... अभी शरीर को ठीक नहीं हो तो भी बाहर भटकते हैं, ऐसा लोग कहते हैं। है न? क्या कहते हैं? हार्ट पर कुछ असर है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तू क्या है? मैं तो त्रिकाली हूँ परन्तु त्रिकाली का अवलम्बन लेने में पर्याय बिल्कुल ही नहीं है — ऐसा लक्ष्य करके अवलम्बन लेने जायेगा (तो) सम्यग्दर्शन नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? आत्मा में विकार है, वह सत्यार्थ है; कर्म से नहीं। आहाहा!

श्रोता : आपको तो आनन्द आ रहा होगा, हंसी आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चीज बापू! आहाहा! यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ सन्तों की वाणी में व्यवहार अभूतार्थ कहा तो उसका स्पष्टीकरण पण्डितजी करते हैं कि अभूतार्थ तो इस अपेक्षा से कहा कि कायम रहने की चीज नहीं है और कायम रहने

की चीज का अवलम्बन लेने के लिए पर्याय का लक्ष्य छुड़ाने को गौण करके असत्यार्थ कहा, परन्तु पर्याय नहीं है और अशुद्धता है ही नहीं — ऐसा लक्ष्य करने को द्रव्य का अवलम्बन करेगा (तो) नहीं होगा, क्योंकि पर्याय तो इसकी है (और) इसने मानी ही नहीं। समझ में आया ? पर्याय में अशुद्धता, संसार है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! पण्डित जयचन्दजी भी इतना स्पष्टीकरण करते हैं। पहले के पण्डित भी कोई....

इसलिए सर्वनयों.... सर्वनयों में क्या आया ? अशुद्ध द्रव्यार्थिक, विकारी पर्याय, मिथ्यात्व पर्याय आदि है — ऐसा लक्ष्य/जानना चाहिए। पर्याय में मिथ्यात्व है ही नहीं और पर्याय है ही नहीं, आहाहा ! तो उसने सब नय को सत्यार्थ नहीं माना। आहाहा ! ऐसी बात है। कहो, बाबूभाई ! यह ऐसी बातें हैं।

इस प्रकार स्याद्वाद को समझकर.... देखो ! **इस प्रकार स्याद्वाद को समझकर जिनमत का सेवन करना चाहिए,.....** पर्याय अशुद्ध है, विकार है, यह नय में लक्ष्य रखकर, त्रिकाली का आश्रय लेना, वह स्याद्वाद की शरण है, एकान्त मानना कि द्रव्य ही है और पर्याय नहीं, अशुद्धता नहीं, संसार नहीं, आत्मा में विकार नहीं.... समझ में आया ? तो यह एकान्त है। आहाहा ! है ? **एकान्त पक्ष नहीं पकड़ना चाहिए।....** आहाहा ! है ? **मुख्य-गौण कथन को सुनकर....** द्रव्य त्रिकाली को मुख्य कहकर निश्चय कहा और पर्याय अशुद्ध आदि के भेद को गौण करके असत्यार्थ कहा। गौण करके असत्यार्थ कहा तो सर्वथा एकान्त पक्ष नहीं पकड़ना चाहिए। पर्याय है ही नहीं, अशुद्धता जीव में-पर्याय में है ही नहीं; संसार विकारी पर्याय जीव की पर्याय में है ही नहीं ऐसा एकान्त नहीं लेना। अज्ञानी माया कहता है और वेदान्ती..... ऐसे नहीं यामा यह है नहीं परन्तु या कहते ही इसका अस्तित्व सिद्ध हो गया। समझ में आया ? या-मा यह नहीं, तो यह नहीं तो यह है उसमें आ गया। विकार है, राग है, संसार है, पण्डितजी ! 'यह' है नहीं तो उसमें 'यह' तो आ गया, 'है' आ गया। समझ में आया ? मैं आत्मा हूँ नहीं तो उसमें 'मैं' ऐसा आ गया, जिसने निर्णय किया वह आत्मा है। आहाहा ! समझ में आया ? भगवान का लॉजिक-न्याय बहुत सूक्ष्म है। आहाहा !

इस गाथासूत्र का विवेचन करते हुए टीकाकार आचार्य ने भी कहा है कि आत्मा व्यवहारनय की दृष्टि में जो बद्धस्पृष्ट आदि रूप दिखाई देता है.... है, कर्म

का सम्बन्ध है अनियतता है, विशेषता है, राग-द्वेषता है। इसको भूतार्थ पहले कहते आये हैं, पर्यायनय से भूतार्थ है — ऐसा लिखा है। **वह इस दृष्टि से तो सत्यार्थ ही है....** पर्यायदृष्टि से तो यह बद्धस्पृष्ट व्यवहार आदि, राग आदि है तो है ही इस दृष्टि से तो सत्य है। आहाहा! ऐसा अब, फुरसत नहीं मिलती, धन्धा कब करना! ए... हसमुखभाई! धन्धे के कारण फुरसत कहाँ? पर के पाप आदि करने के काल में, आत्मा को बिगाड़ने के रास्ते के काल में यह सुधरने का रास्ता कब सूझे? आहाहा!

परन्तु शुद्धनय की दृष्टि से बद्धस्पृष्टादिता असत्यार्थ है।.... पर्यायदृष्टि से तो सत्यार्थ है। **इस कथन में टीकाकार आचार्य ने स्याद्वाद बताया है — ऐसा जानना।** अपेक्षा से कहना यह बताया है। त्रिकाल को सत्यार्थ और पर्याय को असत्यार्थ, यह अपेक्षा से कहा है। एकान्त मान ले कि पर्याय और अशुद्धता है ही नहीं — ऐसा नहीं है और वह अशुद्धता कर्म के कारण है — ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? अपनी पर्याय की उस क्षण की योग्यता के कारण से वह अशुद्धता है। आहाहा! ऐसा स्वरूप! अब इसे समाज में, यह समझ में नहीं आये इसलिए फिर व्रत और तप करो, भक्ति और यह पूजा और.... आहाहा! भगवान! यह सब तो राग की क्रिया है न नाथ! परन्तु यह कहीं आत्मा का त्रिकाली स्वरूप नहीं, आहाहा! यह कोई धर्म नहीं, अधर्म है, अधर्म है। ये भी हैं अवश्य, रागभाव वह अधर्म है, वह है अवश्य पर्याय में। आहाहा! उसका लक्ष्य छोड़ाकर त्रिकाली का अवलम्बन ले, प्रभु! जहाँ भगवान पूर्ण परमात्मा पड़ा है, आहाहा! उसका आश्रय दिया है, पर्याय को गौण करके, अभाव करके (त्रिकाली का आश्रय) नहीं दिया है।

यहाँ यह समझना चाहिए कि वह नय है, यह श्रुतज्ञान-प्रमाण का अंश है;.... नय तो प्रमाण का अंश है। श्रुतज्ञान, वह प्रमाण है। है तो श्रुतज्ञान पर्याय... भावश्रुतज्ञान है तो पर्याय परन्तु वह पर्याय प्रमाण है। क्योंकि द्रव्य और पर्याय इन दोनों को जानती है तो वह प्रमाण है। आहाहा! उस प्रमाण का अंश नय, वह तो प्रमाण का अंश है।

श्रुतज्ञान वस्तु को परोक्ष बतलाता है;.... श्रुतज्ञान की (पर्याय) प्रत्यक्ष अन्दर नहीं है, आनन्द का भले प्रत्यक्ष हो परन्तु श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष में, वह नहीं है परोक्ष है; **इसलिए यह नय भी परोक्ष ही बतलाता है।....** देखो, शुद्धनय, श्रुतज्ञान का अंश, श्रुतज्ञान परोक्ष है और उसका भेद नय श्रुत वह भी परोक्ष है।

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषयभूत, बद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावों से रहित आत्मा चैतन्यशक्तिमात्र है.... भगवान चैतन्यशक्ति, चैतन्य सामर्थ्य स्वभावरूप। अब क्या कहा देखो ? **वह शक्ति तो आत्मा में परोक्ष है ही;....** वस्तु की शक्ति है, वह तो परोक्ष ही है, द्रव्यस्वभाव तो परोक्ष ही है, वह वस्तुस्वभाव जो है, वह पर्याय में प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता; अत: परोक्ष ही है। आहाहा!

श्रोता : वह तो अन्तर अनन्त अखण्ड प्रत्यक्ष प्रमाण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रत्यक्ष हुई कब ? वह तो एक अपेक्षा से प्रत्यक्ष हुई, यह कहेंगे। आनन्द की अपेक्षा से प्रत्यक्ष है और श्रुतज्ञान में पर की अपेक्षा नहीं, इस अपेक्षा से प्रत्यक्ष है। वरना तो है तो परोक्ष ही है।

श्रोता : प्रत्यक्ष प्रमाण किस प्रकार ?

समाधान : प्रत्यक्ष तो अन्दर स्वसंवेदन नामक गुण है — ऐसी उसकी दृष्टि करने से पर्याय में स्वसंवेदन प्रत्यक्ष आता है परन्तु वह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष राग की अपेक्षा नहीं इस अपेक्षा से कहा है। बाकी तो वह तो परोक्ष है। ज्ञान प्रत्यक्ष — ऐसा देखता है ? केवलज्ञान देखता है ऐसे श्रुतज्ञान देखता है ? आहाहा! यह तो आया है न वहाँ 'अनुभवो पच्चक्खो' — मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आया है कि तुम जो प्रत्यक्ष कहते है तो अनुभव में प्रत्यक्ष का वहाँ श्लोक में, वहाँ श्लोक अष्ट सहस्री का है। 'अनुभवो पच्चक्खो' — अनुभव प्रत्यक्ष कहा और तुम तो श्रुतज्ञान को परोक्ष कहते हो ? मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आया है, कि भाई सुन तो सही किस अपेक्षा से हम परोक्ष कहते है ? यह नय का ज्ञान, जो पूर्णस्वरूप असंख्य प्रदेशी है — ऐसा नहीं देखता है। यह श्रुतज्ञान का अंश, असंख्य प्रदेश है, वह नहीं देखता है परन्तु वेदन में आनन्द आता है, इस अपेक्षा से उसको प्रत्यक्ष भी कहा जाता है। आनन्द कोई दूसरा वेदन करता है और अपने वेदन में नहीं है — ऐसा नहीं है। इस अपेक्षा से प्रत्यक्ष कहा है। यहाँ परोक्ष ही है। श्रुतज्ञान परोक्ष ही है और दूसरी बात कही थी शक्ति अर्थात् द्रव्यस्वरूप, ऐसा द्रव्य पर्याय में नहीं आया। इसलिए शक्ति परोक्ष हो गयी — ऐसी बात तो अभी चलती है। यह कहा था, पहले कहा था कि शक्ति जो द्रव्यशक्तिरूप त्रिकाली है वह तो परोक्ष ही है क्योंकि प्रत्यक्ष पर्याय में वह नहीं आया — एक बात। दूसरी

बात — **वह शक्ति तो आत्मा में परोक्ष है ही;...** क्या कहते हैं? चैतन्यशक्ति, चैतन्य सामर्थ्य, चैतन्यस्वरूप ध्रुव तो पर्याय में परोक्ष है, पर्याय में आया नहीं। इन पण्डितों के कथन भी अलौकिक हैं! आहाहा! आहाहा! नहीं तो यह गाथा लेना था परन्तु इस कथन में भी समझने की चीज है।

शक्ति तो आत्मा में परोक्ष है ही और उसकी व्यक्ति.... अब देखो! **कर्मसंयोग से मतिश्रुतादि ज्ञानरूप है,....** अन्दर पर्याय में मति-श्रुतज्ञान पर्याय में है। वह शक्ति तो भिन्न-दूर रह गयी परन्तु पर्याय में मति-श्रुतज्ञान प्रगट पर्याय में है। **वह कथंचित् अनुभवगोचर होने से.....** देखो! **प्रत्यक्षरूप भी कहलाती है,....** मति-श्रुतज्ञान को, मति-श्रुत प्रत्यक्ष जो प्रगट है, उसको प्रत्यक्ष भी कहा जाता है। त्रिकाल वस्तु तो परोक्ष ही है। आहाहा! अरे... अरे...! ऐसी बातें हैं।

परन्तु वह शक्ति जो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप, भगवान सत् प्रभु की व्यक्ति जो पर्याय में प्रगट होती है, वह मति और श्रुतज्ञान, तो उस मति-श्रुतज्ञान को कथंचित् किसी पर की अपेक्षा रखे बिना स्व को जानते हैं तो वहाँ प्रत्यक्ष भी कहा जाता है। इस अपेक्षा से (प्रत्यक्ष भी कहा जाता है)। आहाहा! पाटनीजी! बातें तो ऐसी है, भगवान! क्या करे प्रभु! आहाहा! भगवान! तूं इतना बड़ा है कि तेरा पार पाना... आहाहा!

और सम्पूर्णज्ञान-केवलज्ञान.... वह तो **छद्मस्थ के प्रत्यक्ष नहीं है....** इसलिए वह भी परोक्ष है। **तथापि यह शुद्धनय आत्मा के केवलज्ञानरूप को परोक्ष बतलाता है....** अकेला केवल स्वरूप अकेला... **जब तक जीव इस नय को नहीं जानता तब तक आत्मा के पूर्णरूप का ज्ञान-श्रद्धान नहीं होता।....** केवलज्ञान शब्द से यहाँ वह पर्याय नहीं (समझना)। एक ज्ञान, एक ज्ञान, सर्वज्ञ ज्ञान केवल ज्ञान ऐसा पूर्ण स्वरूप, उसको जब तक न जाने, आहाहा! है? **जब तक जीव इस नय को नहीं जानता तब तक आत्मा के पूर्णरूप का ज्ञान-श्रद्धान नहीं होता।....** वह पूर्ण स्वरूप जो ज्ञानशक्ति ध्रुव है, उसको जब तक न जाने, तब तक ज्ञान और श्रद्धान सच्चा नहीं है। आहाहा! है? **इसलिए श्रीगुरु ने इस शुद्धनय को प्रगट करके उपदेश किया है....** इस शुद्धनय को प्रगट करके, स्व का आश्रय दिया है। आहाहा! प्रगट

करके, हाँ! अपने (में) भी पर्याय में शुद्धनय प्रगट करके, पर को प्रगट करने का बतलाया है। आहाहा! अरे...रे! भगवान की पर्याय भी गम्भीर, गुण भी गम्भीर, द्रव्य भी गम्भीर! आहाहा! अलौकिक बातें हैं भाई!

यह बनिये तो अकेले व्यापार में घुस गये और पाप के धन्धे के कारण पूरे दिन फुरसत नहीं मिलती, वहाँ तो पुण्य भी नहीं, धूल में पैसा, वहाँ कहाँ था? वह तो पुण्य होवे तो आता है परन्तु राग में घुस गया, यह करूँ और यह करूँ और यह तो जापानी ने ऐसा कहा था कि जैनधर्म अनुभूति है परन्तु बनियों को हाथ में आया, बनिये व्यवसाय में घुस गये। बनिये अर्थात् व्यापारी, चाहे तो खोजा हो, वह भी व्यापारी कहने में आता है और कोई बनिया जाति है वह बनिया ऐसा अर्थ कहा नहीं। व्यापार करे वह बनिया, तो दूसरे मुसलमान भी व्यापार करे तो वे बनिया कहे जाते हैं, व्यापार करते हैं। उसमें घुस गये। आहाहा! अर...र! सबेरे से रात्रि ये...ये...! ऐसी कल्पना करके सो जाये तो कल्पना तो स्वप्न में भी वही बात आ जाती है।

अरेरे! ऐसा आत्मा को समझना, उसके लिये तो बहुत निवृत्ति चाहिए प्रभु! आहाहा! क्योंकि वह तो विकल्प से भी निवृत्त स्वरूप है। है? तो पर की निवृत्तिस्वरूप तो है ही, परन्तु पर की निवृत्ति से हटता नहीं, छूटता नहीं, प्रवृत्ति में पड़ा-पड़ा पड़ा... आहाहा! तो कहते हैं — **शुद्धनय को प्रगट करके उपदेश किया है कि बद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावों से रहित पूर्णज्ञानघनस्वभाव आत्मा को जानकर श्रद्धान करना चाहिए, पर्यायबुद्धि नहीं रहना चाहिए।** पर्याय नहीं है — ऐसा नहीं है परन्तु पर्यायबुद्धि नहीं रहना चाहिए। आहाहा!

यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि ऐसा आत्मा प्रत्यक्ष तो दिखायी नहीं देता और बिना देखे श्रद्धान करना असत् श्रद्धान है। उसका उत्तर यह है — देखे हुए का ही श्रद्धान करना तो नास्तिकमत है। जैनमत में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रमाण माने गये हैं,..... परोक्ष भी प्रमाण है, परोक्ष भी प्रमाण है, प्रत्यक्ष भी प्रमाण है, परोक्ष भी प्रमाण है। प्र + माण - माप करनेवाला, परोक्ष भी यथार्थ प्रमाण है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अभी भावार्थ चलता है, उसमें सूक्ष्मता लगती है। आहाहा! है? **देखे हुए का ही श्रद्धान करना तो नास्तिकमत है। जैनमत में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रमाण**

माने गये हैं,.... दोनों प्रमाण हैं। **उनमें से आगम प्रमाण परोक्ष है;...** आगम अर्थात् यह ज्ञान, हाँ! भावश्रुतज्ञान वह आगम प्रमाण, वह ज्ञान, उसका अर्थ शुद्धनय है।

भावश्रुतज्ञान आगम प्रमाण, यह आगम, हाँ! आगम अर्थात् शास्त्र नहीं, भावश्रुतज्ञान जो है, वह परोक्ष है और **उसका भेद शुद्धनय है। इस शुद्धनय की दृष्टि से शुद्ध आत्मा का श्रद्धान करना चाहिए,....** आहाहा! पर्याय है, इसका लक्ष्य तो रखना चाहिए परन्तु वह बुद्धि छोड़कर, द्रव्य की लक्ष्य बुद्धि करना चाहिए। आहाहा! अरे! ऐसी बातें अब! **मात्र व्यवहार-प्रत्यक्ष का ही एकान्त नहीं करना चाहिए।** बस इतना, व्यवहार पर्याय है, गुण-गुणी भेद है परन्तु मात्र व्यवहार का ही पक्ष नहीं करना चाहिए। है उसका ज्ञान करके त्रिकाली का आश्रय करना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! है? अब, इस शुद्धनय को मुख्य करके कलश कहते हैं, उसका कलश है। यह तो टीका का भावार्थ आया, समझ में आया? अब उसका कलश कहेंगे, विशेष....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)